बौद्ध–दर्शन में प्रज्ञापारमिता की सङ्कल्पना

डॉ0 निरुपमा त्रिपाठी

संक्षिप्तिका

महायान सूत्रों में पारमिताषट्क का उल्लेख है। ये षट् पारमिताएँ हैं– दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एवं प्रज्ञापारमिता। इनमें प्रज्ञा को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। बौद्ध दर्शन में यह विशुद्ध एवं निर्विकल्पक ज्ञान है जो सामान्य बुद्धि से भिन्न है। महायान शाखा में शून्यता चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्त्व है, विशुद्ध प्रज्ञा द्वारा ही जिसका साक्षात्कार किया जा सकता है। विशुद्धज्ञानस्वरूपा इस प्रज्ञा का अन्य दर्शनों अथवा शास्त्रों में भी उपयोगितानुसार वर्णन प्राप्त होता है। अन्य दर्शनों एवं शास्त्रों में भी यह प्रज्ञा ऐसे निर्विकल्पक ज्ञान के रूप में व्याख्यायित है, जो परमार्थ या सारतत्त्व है तथा सारतत्त्व तक पहुँचने का माध्यम भी है। इसीलिए बौद्धदर्शन में प्रज्ञापारमिता सर्वतथागतजननी, धर्ममुद्रा, धर्मोल्का, धर्मभेरी एवं सर्वसुख हेतु है।

हीनयान के दोषों एवं अन्तर्विरोधों के शमनपूर्वक महात्मा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट अद्वैतवाद की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु उदित–महायान सूत्रों में साधन–मार्ग को ध्यानचतुष्टय, समाधित्रय, पारमिताषट्क, चार भूमिविहार और भूमि दशक के रूप में वर्णित किया गया है। इनमें षट् पारमिताएँ हैं– दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एवं प्रज्ञापारमिता। पारमिता का अर्थ है पूर्णत्व तथा प्रज्ञा(प्र+ज्ञा+अ+टाप्) का सामान्य अर्थ है मेधा, समझ अथवा बुद्धिमत्ता। षट्पारमिताओं में प्रज्ञा को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। बौद्ध दर्शन में यह विशुद्ध एवं निर्विकल्पक ज्ञान है। यह सामान्य बुद्धि से भिन्न है। अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता सूत्र में इस ज्ञान को भाँति–भाँति से स्पष्ट करते हुए निरक्षर, गम्भीर एवं वितर्कशून्य बताया गया है।[1] अद्वैत तत्त्व बुद्धि–ग्राह्य नहीं है उसका साक्षात्कार अपरोक्षानुभूति अथवा प्रज्ञापारमिता द्वारा ही हो सकता है। प्रज्ञा निर्विकल्पक और निरपेक्ष ज्ञान है वह सविकल्पक सापेक्ष–ज्ञान रूपी तर्क से सर्वथा भिन्न है।

भारतीय जीवन में आध्यात्मिक प्रयोजन ही सर्वोपरि रहा है तथा एक परम सत्ता में विश्वास ही इस अध्यात्म का मूल है। जीवात्मा का विश्वात्मा के साथ सम्बन्ध के प्रश्न पर सभी भारतीय दर्शनों में विचार–विमर्श, तर्क, वितर्क स्वाभाविक रूप से प्राप्त होते रहे हैं। तर्क, युक्ति और प्रमाण का आश्रय लेकर विचारक अपना–अपना मत सिद्ध करते हैं। ''भिन्न एवं परिवर्तित होने वाले पदार्थों के बीच जो न भिन्न होता है, न ही परिवर्तित होता है, वह अवश्य उन पदार्थों से भिन्न हैं।''[2] प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक ब्रेडले ने भी दर्शन का मूलभूत उद्‌देश्य उस अनुसन्धान को माना है जो आभासिक सत्ता के पीछे निगूढ सत्य स्वरूप तत्त्व को प्रकट करता है। उसी तत्त्व की प्राप्ति अथवा उससे तादात्म्य ही मुक्ति है जिसे पृथक–पृथक् दर्शनों में पृथक्–पृथक् संज्ञाओं से कहा गया है। आत्माज्ञान की सर्वोच्च अवस्था परमतत्त्व के साथ सन्धि है अथवा शून्यता में विलीन हो जाना है? इस पर भी भाँति–भाँति से चर्चा की गई है। उपनिषदों में जीवात्मा का परब्रह्म से एकाकार होना दर्शाया गया है[3] तथा भेद–दृष्टि की निन्दा की गई है।[4] कतिपय बौद्धधर्ममतावलम्बी उपनिषदों की इस मुक्तावस्था को अभाव के रूप में प्रतिपादित करते हैं तो वेदान्ती उपनिषदों का अनुसरण करते हुए परमार्थ सत्ता में लीन हो जाने को मुक्ति मानते हैं। वस्तुतः जन्म और मृत्यु के बन्धन से सदा के लिए छूट जाना ही मुक्ति है। महायान बौद्ध दर्शन का एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय है शून्यवाद। इसमें शून्यवादी शून्य शब्द का प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ स्वीकार करते हैं। शून्य के दो रूप हैं, दो भिन्न दृष्टिकोणों के कारण । एक दृष्टि के अनुसार इसका अर्थ है प्रपञ्चशून्य। परतत्त्व अनिर्वचनीय है इस लिए क्योंकि वह वाणी एवं बुद्धि

द्वारा ग्राह्य नहीं है, संसार भी अनिर्वचनीय है क्योंकि वह न सत् है, न असत्, नसदसद्भिन्न। संसारस्वभाव–शून्य है और तत्त्व प्रपञ्चशून्य। इस प्रकार शून्य शब्द का अर्थ यहाँ अभाव मात्र नहीं है। इसका अर्थ अनिर्वचनीय ले सकते हैं। संसार अनिर्वचनीय होने से मिथ्या है तथा निर्वाण अनिर्वचनीय होने से सत्य।यहीं बुद्धि एवं प्रज्ञा की पृथक्–पृथक् भूमिका स्पष्ट होती है। लङ्कावतारसूत्र में कहा गया है कि बुद्धि केवल विकल्प, विकार, अपेक्षा, भेद, व्यवच्छेद एवं द्वैत को ग्रहण करती है तत्त्व अथवा सत्य को नहीं। सम्पूर्ण संसार का व्यवहार बुद्धि की चार कोटियों में समाहित हो जाता है– सत्, असत्, सदसत्, तथा सदसदभिन्न।[5] सविकल्पक तर्कपूर्ण ज्ञान ही बुद्धि है जो स्वयं विषयी बनकर विषयरूप वस्तु में प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करता है।निर्विकल्प, निरपेक्ष, निराभास, निगुर्ण और निर्विशेष तत्त्व कभी भी विषयस्वरूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। अतः उसे तर्क द्वारा नहीं जाना जा सकता है; उस तत्त्व का साक्षात्कार कराने की सामर्थ्य केवल विशुद्ध ज्ञान स्वरूपा प्रज्ञा में ही है।[6]इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्ध दर्शन के अनुसार तत्त्व–दर्शन हेतु बुद्धि की कोटियों से परे जाना होगा। कठोपनिषद् में भी तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का तर्क से परे होना बताया गया है–

> नैषा तर्केण मतिरापनेया।
> प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।।[7]

बौद्ध आचार्य नागार्जुन ने अपने प्रबल तर्कों से यह सिद्ध किया है कि सभी बुद्धिग्राह्य पदार्थ अनिर्वचनीय होने से स्वभाव शून्य हैं और स्वभावशून्य होने से मिथ्या हैं, सत्य नहीं। नागार्जुन ने अपने ग्रन्थ माध्यमिककारिका के मङ्लाचरण में 'अष्टनिषध' के माध्यम से व्यवहार में सत्य प्रतीत होने वाले समस्त प्रपञ्च को परमार्थ में असत् सिद्ध किया है। उनके अनुसार पारमार्थिक दृष्टि से न निरोध है, न उत्पत्ति, न अनित्य है, न नित्य, न एक है, न नाना, न आना है न ही जाना।[8]

शून्यवाद के अनुसार संसार का उत्पाद एवं विनाश न होने से इसकी स्थिति भी स्वीकार नहीं की जा सकती।[9] शून्यवादी जगत् को मिथ्या सिद्ध करता है असत् नहीं। जगत् की व्यवहारिक सत्ता है, पारमार्थिक नहीं। इस प्रकार इनके अनुसार निवार्ण न भाव है, न अभाव, न अभय और न ही अनुभय रूप। इस प्रकार चतुष्कोटिविनिर्मुक्त (सत्, असत्, सदसत् और सदसद्भिन्न) होने से निवार्ण अनिर्वचनीय हुआ। अनिर्वचनीय होने से ही मिथ्या या स्वभावशून्य हुआ, सत्य नहीं।[10] इस प्रकार के तत्त्व के साक्षात्कार के लिए बुद्धि के सविकल्पक स्तर से उठकर प्रज्ञा के निर्विकल्पक स्तर पर आना पड़ता है। प्रज्ञा के स्तर पर सभी संशय निर्मूल हो जाते हैं; किन्तु बुद्धि सविकल्पक है इसलिए सर्वथा त्याज्य नहीं है। परिपक्व बुद्धि से ही प्रज्ञा तक पहुँचा जा सकता है। लङ्कावतार सूत्र में परमार्थ को प्रज्ञागोचर कहा गया है, वह बुद्धिगोचर नहीं है। वहाँ यह भी स्पष्ट किया गया है कि शून्यता असत् नहीं है, उसे असत् सिद्ध करने वाला नास्तिक वैनाशिक है।[11] शून्यता चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्त्व है, विशुद्ध प्रज्ञा द्वारा ही जिसका साक्षात्कार किया जा सकता है।

विशुद्धज्ञानस्वरूपा प्रज्ञा का अन्य दर्शनों अथवा शास्त्रों में भी उपयोगितानुसार वर्णन प्राप्त होता है। वेदान्त दर्शन में इस विशुद्ध ज्ञान का नाम स्वानुभूति या अपरोक्षानुभूति है। आचार्य शङ्कराचार्य ने भी सत् और असत् के यथार्थ विवेचन के लिए बुद्धि को प्रमाण माना है।[12] सुतर्क की भी अपनी महत्ता है। यही तर्क अपनी सापेक्षता एवं सविकल्पता से मुक्त होकर निरपेक्ष एवं निर्विकल्पक विशुद्ध ज्ञान में लीन होता है। तर्क का नाश नहीं होता अपितु वह विकास की चरम पर पहुँचता है। वस्तुतः वेदान्त में आत्मसाक्षात्कार और आत्मा के स्वरूप–ज्ञान की अवधारणा उपनिषदों से ली गई है। मुण्डकोपनिषद् में यह कहा गया है कि आत्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेने पर जीव की अहङ्कार रूपी हृदय–ग्रन्थि खुल जाती है तथा उसके सभी संशय नष्ट हो जाते हैं।[13] तैत्तरीयोपनिषद्वार्तिककार सुरेश्वराचार्य ने साधक के आत्मज्ञान को प्रातिभज्ञान की संज्ञा दी है।[14] शैवदर्शन में प्रतिभा के लिए कहा गया है कि अध्यात्म के क्षेत्र में यह परमेश्वर कीशक्ति है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार परम शिव ही सृष्टि का एकमात्र परम तत्त्व है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आचार्य अभिनवगुप्त अपने ग्रन्थ तन्त्रलोक में स्पष्ट करते हैं कि ज्ञान के स्तर

पर प्रतिभा को प्रातिभज्ञान कहा जा सकता है। प्रातिभज्ञान सम्पन्न व्यक्ति सब कुछ जानने एवं सब कुछ प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है–

इत्थं प्रातिभज्ञानं किं–किं कस्य न साधयेत्।[15]

यह ज्ञान बिना किसी शास्त्र या आचार्य की सहायता से स्वतः स्फुरित होता है–

तत्प्रातिभं महाज्ञानं शास्त्राचार्यनपेक्षि यत्।[16]

बौद्ध–दर्शन की प्रज्ञा की भाँति प्रतिभा ज्ञान भी बुद्धि से सवर्था भिन्न है। बुद्धि जड होती है और विषय ग्रहण करने के लिए वह इन्द्रियों पर निर्भर रहती है, जबकि प्रतिभज्ञान अतीन्द्रीय होता है।[17] प्रत्यभिज्ञा दर्शन की उपशाखा क्रमसिद्धान्त के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ महार्थमञ्जरी में रचयिता महेश्वरानन्द ने प्रतिभा पर भासा शक्ति के रूप में विचार किया है। क्रमसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के पाँच प्रमुख तत्त्व हैं, जिनमें भासा प्रमुख है, इसी का नाम प्रतिभा भी है–

भासा नाम च प्रतिभा महती सर्वगर्भिणी।
स्वभावशिवैकात्मदेशिकात्मक चिन्मयी।।
यस्यां हि भित्तिभूतायां मातृमेयात्मकं जगत्।
प्रतिबिम्बतया भाति नगरादिव दर्पणे।।
स्वातन्त्र्यरूपा सा काचिच्छक्तिः परमेष्ठिनः।
तन्मयो भगवान् देवो गुरुर्गुरुमयी च सा।।[18]

अथार्त प्रतिभा या भासा सभी को आत्मसात् करने वाली है, वह अपने स्वभाव से शिव के साथ तादात्म्य रचाती है। वह चैतन्यरूपा है और उसमें सम्पूर्ण विश्व प्रतिबिम्बित होता है।

योग दर्शन में भी प्रज्ञा अथवा प्रतिभा की चर्चा ही गई। सम्प्रज्ञात समाधि रहित विशेष स्थिति मेंजब चित्त क्लेश–वासना रहित होकर स्थिर हो जाता है तब ऋतम्भरा प्रज्ञा उदित होती है।[19] पतञ्जलि के व्याख्याकार भोजराज के अनुसार यह प्रज्ञा ऋत अथवा सत्य को धारण करती है; तथा इसका कभी विपयर्य नहीं होता, इसीलिए इसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं। योगसूत्र भाष्य में उद्धृत पद्य में यह स्पष्ट किया गया है कि यह प्रज्ञा तीन प्रकार से उपलब्ध होती है, आगम, अनुमान तथा ध्यान और अभ्यास। इस तीन प्रकार से प्रज्ञा को प्राप्त करके साधक योग की उत्तम दशा को प्राप्त होता है–

आगमेनानुमानेन ध्यनाभ्यासरसेन च
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्।[20]

इतनाही नहीं प्रज्ञा के प्रासाद पर आरुढ़ होकर पुरुष सांसारिक सुख–दुःख से ऊपर उठ जाता है, वह सांसारिक विषयों पर निर्लिप्त होकर देखता है–

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य न शोच्यश्शोचतो जनाः।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।[21]

योगसूत्र भाष्यविवरण में प्रज्ञा की उपलब्धि द्वारा योगी के चित्त में नवनव संस्कारों के उन्मेष का कथन किया गया है–

समाधिप्रज्ञाप्रतिलम्भे योगिनः संस्कारो नवो नवो जायते।[22]

इसी से अनुप्राणित होकर भट्टतौत ने प्रज्ञा को इस रूप में परिभाषित किया – ''प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।'' उनकी यह परिभाषा काव्यशास्त्रीय जगत् में काव्य के उद्भव में हेतु स्वरूपिणी प्रज्ञा अथवा प्रतिभा की व्याख्या का आधार बनी। व्यक्तिविवेककार महिम भट्ट ने स्पष्ट किया है कि प्रज्ञा ही प्रतिभा है, जो कवि में उस क्षण उत्पन्न होती है जब उसका चित्त

रस के अनुकूल शब्द और अर्थ की चिन्ता में निश्चल हो जाता है।यह शङ्कर के तृतीय नेत्र के समान है जिसके द्वारा कवि तीनों लोकों के पदार्थों का साक्षात्कार करता है–

रसानुगुणशब्दार्थचिन्तास्तिमितचेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञेव प्रतिभा कवेः।।
सा हि चक्षुर्भगवतस्तृतीयमिति गीयते।
येन साक्षात्करोत्येष भावांस्त्रैलोक्यवर्तिनः।।[23]

इस प्रकार बौद्ध दर्शन में षट्परमिताओं का जो स्वरूप वर्णित है, उसी रूप में तथा उसी महत्त्व के साथ प्रज्ञा अन्य दर्शनों एवं शास्त्रों में भी यह व्याख्यायित है। यह स्वयं निर्विकल्पक ज्ञान है, जो परमार्थ या सारतत्त्व है तथा सारतत्त्व तक पहुँचने का माध्यम भीहै। इसीलिए बौद्धदर्शन में प्रज्ञापारमिता सर्वतथागतजननी, धर्ममुद्रा, धर्मोल्का, धर्मभेरी एवं सर्वसुख हेतु है।[24]

---

[1] अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, पृष्ठ 1,3,176,200,343,348,476।

[2] येषु व्यावर्तमानेषु यदनुवर्तते तत्तेभ्यो भिन्नम्। भामती, भारतीय–दर्शन, डॉ॰ राधाकृष्णन, प्रथम भाग, पृष्ठ 27।

[3] क) यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।। कठोपनिषद् 2/1/15

ख) यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/2

ग) धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि।। मुण्डकोपनिषद् 2/2/3

घ) विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति।। प्रश्नोपनिषद् 4/11

[4] यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।। कठोपनिषद् 2/1/10

[5] चातुष्कोटिकं च महामते लोकव्यवहारः। लंकेवदार, पृयठ 188

[6] क) चित्तं विषयसम्बन्धं ज्ञानं तर्के प्रवर्तते। निराभासेऽविशेषे च प्रज्ञा वै संप्रवर्तते। लङ्कावतार सूत्र, पृष्ठ 130

ख) श्वभूताः कुतार्किकाः। तत्त्वं न पश्यन्ति तार्किकास्तर्कविभ्रमात्। लङ्कावतार सूत्र, पृष्ठ 167, 274

[7] कठोपनिषद्, 1/2/9

[8] अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम्।।
यः प्रतीत्यसमुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम्।
देशयामास सम्बुद्धस्तं वन्दे वदतां वरम्।। माध्यमिककारिका पृष्ठ 11

[9] संसारोऽनवराग्रो हि नास्यादिर्नापि पश्चिमम्।
नैवाग्रं नावरं यस्य तस्य मध्यं कुतो भवेत्। माध्यमिककारिका; 11/1–2

[10] माध्यमिककारिका; 2/4–16

[11] वरं खलु सुमेरुमात्रा पुद्गलदृष्टिर्न त्वेव नास्त्यस्तित्वाभिमानिकस्य शून्यतादृष्टिः।
... स हि ... वैनाशिको भवति। लङ्कावतार सूत्र , पृष्ठ 146

[12] बुद्धिर्हि नः प्रमाणं सदसतोर्याथात्म्यावगमे। कठभाष्य 6/12

[13] भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। मुण्डकोपनिषद् ,2/2/8

[14] सुमुक्षोस्तत्परस्येव श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु।
अपि च प्रतिभं ज्ञानमाविर्भवति मोक्षदम्।। तैत्तिरीयोपनिषद्वार्तिक 9/160

[15] तन्त्रलोक, 13/95

[16] तन्त्रलोक, 13/80

[17] तन्त्रलोक, 13/120,121

[18] महार्थमञ्जरी, 105

[19] ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा, पातञ्जल योगसूत्र, 1/45

[20] पातञ्जल योगसूत्र, भाष्य विवरण पृष्ठ 114

[21] पातञ्जल योगसूत्र, भाष्य विवरण पृष्ठ 114

[22] पातञ्जल योगसूत्र, भाष्य विवरण पृष्ठ 116

[23] व्यक्ति विवेक 2/111,112

[24] अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृष्ठ 529